International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Volume 01, No. 03, July - September, 2019, pp.236-244

विधि एवं सामाजिक परिवर्तनः (हिन्दू मिताक्षरा सहदायिकी की अवधारणा में हिन्दू उतराधिकार अधिनियम, 2005 के पश्चात हुये परिवर्तन तथा अन्य समसामयिकी विषयों के संबंध में)

मनोज तिवारी*
डॉ. डी. एस. थालोर**

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में अकेला नहीं रह सकता है इसलिए मनुष्य ने परिवार समाज, राज्य जैसी संस्थाओं का निर्माण किया है जो मनुष्य के जीवन को सर्वागिण विकास की ओर ले जाने में उपयोगी संस्थाए है। विधि के विषय में विधिशास्त्रीयों में मतभेद है और विधि को प्रत्येक विधि शास्त्री ने अपनी–अपनी अध्ययन शाखा के अनुरूप परिभाषित किया है। विधिशास्त्री आस्टीन का कहना है कि विधि सप्रभु का समादेश है। विधिशास्त्री सेविनी का कहना है कि विधि उसी प्रकार विकसित हुयी है जिस प्रकार एक बच्चे का शरीर जन्म लेने के पश्चात अपने आप विकसित होता है। उनका कहना है कि विधि का निर्माण नही किया जाता बल्कि विधि समाज की आवश्यकता के अनुसार स्वयं अपने आप विकसित होती है। उनके अनुसार समाज की प्रथा और रिवाज विधि का स्वरूप होते है इस विचारधारा को विधि की ऐतिहासिक विचारधारा कहा जाता है। विधि की समाजशास्त्रीय विचारधारा के अनुसार विधिशास्त्री बैंथम का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सुखों और दुखों से प्रभावित होकर अपना कार्य करता है। व्यक्ति वह कार्य करना चाहता है जिसमें उसको अधिकतम सुख की प्राप्ति हो और कम से कम दुख प्राप्त हो। बैंथम ने इसके लिए सुख दुख मापक यंत्र भी अपने सिद्धान्त में दिया है। बैंथम की इसी विचारधारा को आगे बढाते हुये समाजशास्त्रीय विधिशास्त्र के महत्वपूर्ण विचारक डीन रास्कोपॉन्ड का कहना है कि विधि एक सामाजिक यांत्रिकी है (सोशल इन्जियनियरिंग) है जिसका कार्य व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों जैसे पारिवारिक हित, आर्थिक हित और राजनीतिक हित तथा सामाजिक हितों में सामजंस्य के साथ कार्य करना है। डीन रास्कापॉन्ड का यह कहना है कि व्यक्ति के अपने हित होते है जैसे प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक स्वतंत्रता चाहता है लेकिन व्यक्ति को उतनी ही स्वतंत्रता दी जा सकती है जिससे कि अन्य व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन ना हो जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को मानने तथा उसका प्रचार प्रसार करने के लिए स्वतंत्र है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह किसी अन्य व्यक्ति को जबरन धर्म परिवर्तन करवा सकता हो क्योकि यदि ऐसा करने की अनुमति हो तो अन्य व्यक्ति के धार्मिक स्वतंत्रता का हनन होगा इस प्रकार विधि का मुख्य कार्य व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों तथा सामूहिक रूप से समाज के हितों के मध्य संघर्ष को सामजंस्यपूर्वक समाधान करते हुये व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सामुदायिक हित दोनो में संतुलन स्थापित करना है।

* शोधार्थी, विधि विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।
** प्राचार्य, राजकीय विधि महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

तीन तलाक

सामाजिक विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न होता है। मनुष्य एक जीवित व्यक्ति है जो सोच विचार सकता है और देश काल और परिस्थतियों के अनुसार किसी समाज विशेष के रीति रिवाज, आचार–विचार, सोच, संस्कार परिवर्तित होते रहते है। कभी–कभी सामाजिक विचारों से विधि में परिवर्तन होता है तो कभी ऐसी स्थिति भी उत्पन्न होती है कि विधि के द्वारा सामाजिक विचारों को बदलाव की दिशा प्रदान की जाती है उदाहरण के तौर पर मुस्लिम विधि में तलाक ए–बिदत जिसे ट्रिपल तलाक भी कहा जाता है। इसे समाज के द्वारा एक सामाजिक बुराई समझा जाता रहा है। सामाजिक तौर पर इसकी निन्दा की जाती रही है लेकिन राजनीतिक तुष्टीकरण के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में ट्रिपल तलाक लंबे समय तक भारतीय समाज में प्रचलन में रहा है यहा तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी ट्रिपल तलाक को असंवैधानिक घोषित किया है। सामाजिक जागृति इस विषय पर लगातार विधि निर्माताओं पर यह दबाव डालती रही है कि इस विषय पर कानून बनाकर ट्रिपल तलाक को अवैध घोषित किया जाना चाहिए। समाज के इस दृष्टिकोण को विधि निर्माता अधिक समय तक उपेक्षित नही कर सके और भारतीय संसद को इस विषय पर कानून बनाकर ट्रिपल तलाक को अवैध घोषित करना पड़ा है। यह तथ्य इस बात को पुष्ट करते है कि सामाजिक जागृति विधि निर्माण को प्रभावित करती है जैसा ट्रिपल तलाक के विषय में किया गया है। तीन तलाक मे मुस्लिम पति द्वारा अपनी पत्नी को एक साथ तीन बार तलाक–तलाक–तलाक शब्द का उच्चारण कर तलाक दिया जा सकता है जिससे मुस्लिम विवाह विघटित हो जाता है तीन तलाक मुस्लिम समाज में पुरूष प्रधान निरंकुश अधिकार है जिसमें कोई भी मुस्लिम पति अपनी पत्नी को बिना किसी कारण भी तीन तलाक दे सकता है चाहे उसकी पत्नी का कोई कसूर ना रहा हो यहा तक कि नशे में दिया गया तलाक भी हनाफी सुन्नी मुस्लिम विधि में मान्य माना जाता रहा है इस प्रकार तीन तलाक मुस्लिम पुरूष को निरंकुश अधिकार प्रदान करता है जो स्त्री स्वतंत्रता के विरूद्ध है। विवाह में स्त्री औीर पुरूष दोनो की स्थिति समान होती है लेकिन तीन तलाक की यह व्यवस्था पुरूष प्रधानता की स्थापन्ना करती है जिस पर कोई वैधानिक नियंत्रण नही था इस विषय पर समाज में सोच–विचार होता रहा, सामाजिक तौर पर तीन तलाक की निन्दा होती रही इसे एक सामाजिक बुराई के तौर पर समााजिक मंचो पर उठाया गया। समाज में जन जागृति उत्पन्न हुयी जिसके कारण माननीय सर्वोच्च न्यायालय और संसद इस विषय पर गंभीर नजर आये और ट्रिपल तलाक को असंवैधानिक घोषित किया गया तथा ट्रिपल तलाक के विरूद्ध दंडात्मक विधि का निर्माण भारतीय संसद के द्वारा किया गया जिसमें तीन तलाक को वैधानिक अपराध घोषित किया गया है जिसके तहत मुस्लिम पति को तीन तलाक दिये जाने पर तीन साल तक की सजा का प्रावधान है। इस अपराध को संज्ञेय और अजमानती अपराध बनाया गया है।

घरेलू हिंसा अधिनियम और लिव–इन–रिलेशनशिप की अवधारणा

सामाजिक नैतिकता में परिवर्तन होने के कारण किसी समय समाज में पूर्ण रूप से अमान्य रहे लिव–इन–रिलेशनशिप को घरेलू हिंसा के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार विधिक संरक्षण दिया गया है। यह तथ्य इस विषय को दर्शाता है कि समाज में नैतिकता परिस्थति सापेक्ष होती है और सामाजिक रूप से जो परिवर्तन आते है वह विधि को प्रभावित करते है। विधि निर्माण समाज की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। भारतीय समाज में बिना विवाह के स्त्री–पुरूष का साथ रहना अनैतिक समझा जाता है लेकिन समाज में कुछ युवा बिना शादी के साथ रहते है और इस रिश्ते को लिव–इन–रिलेशनशिप का नाम दिया गया है इस रिश्ते को यद्यपि सामाजिक तौर पर निन्दनीय माना जाता है परंतु बदली हुयी सामाजिक परिस्थतियों में घरेलू हिंसा अधिनियम में लिव–इन–रिलेशनशिप को घरेलू नातेदारी में स्वीकार किया गया है और घरेलू हिंसा अधिनियम में ऐसी महिला जो बिना शादी के किसी पुरूष के साथ लिव–इन–रिलेशनशिप में रह रही है उस पुरूष से भरण–पोषण की मांग कर सकती

है यदि वह स्वयं अपना भरण–पोषण करने में असमर्थ हो ऐसा ही ऐसे रिश्ते से उत्पन्न हुये बच्चो के विषय में भी किया जा सकता है इस प्रकार सामाजिक आवश्यकताओ के कारण विधि में इस प्रकार का परिवर्तन किया गया है। हिन्दू विधि में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता है। विवाह को सोलह वैदिक संस्कारो में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। प्राचीन हिन्दू विधि में विवाह को जन्म जन्मातंर का सबंध माना गया है। मूल हिन्दू विधि में तलाक अथवा विवाह विच्छेद की कोई अवधारणा नही थी। विवाह एक ऐसा सबंध था जो एक बार स्थापित हो जाने के पश्चात किसी भी परिस्थति में विच्छेदित नही किया जा सकता था परंतु बदलती हुयी परिस्थतियों में हिन्दू विधि में विवाह विच्छेद की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। हिन्दू विवाह को दोषिता के सिद्धान्त के आधार पर दोषी होने वाले पक्षकार के विरूद्ध र्निदोष पक्षकार को विवाह विच्छेद दोषी पक्षकार द्वारा कूरता, अभित्यजन, जारता कारित किये जाने पर दोषी पक्षकार के कुष्ठ रोगी, रतिज रोगी मानसिक रोगी होने के आधार पर र्निदोष पक्षकार को विवाह विच्छेद का अधिकार प्रदान किया गया है। सन 1976 ई में हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 में संशोधन कर आपसी सहमति के आधार पर न चलने वाले विवाह को समाप्त करने का उपबंध किया गया है। बदलती सामाजिक परिस्थतियों में विवाह की संस्था का स्वरूप बदला है और बिना विवाह किये जोडे भी समाज में रहने लगे है। सामाजिक तौर पर आज भी तथाकथित सभ्य समाज में लिव–इन–रिलेशन को निन्दनीय माना जाता है लेकिन विवाह संस्था हिन्दू समाज में विवाह विच्छेद की स्थिति से होते हुये बिना विवाह के व्यस्क स्त्री तथा पुरूष के अपनी इच्छा से साथ रहने व परिवार बनाने की सीमा तक जा पहुची है जिससे वर्तमान विधिक उपंबंधो में परिवर्तन किया जाना जरूरी हो गया था क्योंकि दंड प्रकिया संहिता की धारा 125 केवल वैध पत्नी के लिये भरण–पोषण की व्यवस्था करती है लिव–इन–रिलेशन के तौर पर रहने वाली स्त्री के भरण–पोषण का धारा 125 दंड प्रकिया संहिता में कोई विधिक प्रावधान नहीं है इसलिए घरेलू हिंसा अधिनियम में घरेलू नातेदारी की सीमा में लिव–इन–रिलेशन को भी स्थान दिया गया है जो वर्तमान समय और परिस्थतियों के अनुसार आवश्यक हो गया है।

विधि के द्वारा सामाजिक परिवर्तन

विधि से भी सामाजिक जागृति उत्पन्न होती है और विधि भी समाज को प्रभावित करती है जैसे हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के पारित होने से पूर्व एक हिन्दू पुरूष कितनी भी स्त्रियों से विवाह कर सकता था परंतु हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के लागू होने के पश्चात् द्विविवाह को एक अपराध घोषित किया गया है इस अधिनियम के निर्मित होने के पश्चात हिन्दू समाज में वैचारिक परिवर्तन आया है और समाज में यह देखने में आता है कि आज प्रत्येक हिन्दू पुरूष ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि अपनी पत्नी के जीवित रहते हुये अन्य स्त्री से विवाह करना अनैतिक और विधि विरूद्ध है इसी प्रकार हिन्दू दतक ग्रहण अधिनियम 1956 के लागू होने से पूर्व केवल पुत्र को ही गोद लिया जा सकता था क्योंकि मान्यता यह थी कि पुत्र से ही वंश वृद्धि होती है और उसके द्वारा किये गये पिंडदान से पूर्वजों को मोक्ष प्राप्त होती है परंतु हिन्दू दतक ग्रहण एवं भरण–पोषण अधिनियम 1956 के लागू होने के बाद पुत्री को भी गोद लिये जाने के प्रावधान किये गये है और आज पुत्रियों को भी हिन्दू समाज में गोद लिया जाता है। इस विधिक प्रावधान से समाज में जागृति उत्पन्न हुयी है और आज लड़का–लड़की में भेदभाव किये जाने में कमी आयी है। स्त्री शिक्षा में वृद्धि हुयी है। वर्तमान में सुषमा स्वराज जो कि भारत सरकार में विदेश मंत्री, सुचना प्रसारण मंत्री जैसे बड़े पदों पर रही है का निधन होने के पश्चात उनकी पुत्री के द्वारा उनकी देह का अंतिम संस्कार किया गया है। यह प्रचलित सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन होने का संकेत है इसके बहुत सीमा तक विधि को भी उतरदायी माना जा सकता है क्योकि विधि ने समाज में यह जागृति उत्पन्न की है कि बेटा–बेटी दोनो एकसमान है दोनो में भेदभाव उचित नहीं है। इस तथ्य को समाज ने स्वीकार कर लिया है। यह विधि के द्वारा सामाजिक परिवर्तन आने का संकेत है। यह तथ्य डायसी की थ्योरी लॉ एंड पब्लिक ओपीनियन

की भी पुष्टि करते है क्योंकि डायसी का कहना है कुछ परिस्थतियों में सामाजिक विचार विधि निर्माण का माध्यम बनते है तो कुछ परिस्थतियों में विधि सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन करती है और उस परिवर्तन के अनुरूप समाज में व्यापक स्तर पर परिवर्तन देखने को मिलता है।

हिन्दू उतराधिकार संशोधन अधिनियम 2005 की धारा 6 में किये गये संशोधन द्वारा हिन्दू मिताक्षरा सहदायिकी की अवधारणा में परिवर्तन

हिन्दू विधि में स्त्रियों को पिता की संपति में अधिकार नहीं था लेकिन हिन्दू उतराधिकार अधिनियम 1956 के अस्तित्व में आने के पश्चात पुत्रियों को माता–पिता की स्वअर्जित संपति में पुत्र के बराबर ही उतराधिकार प्रदान किया गया है और एक र्निवसीयती मरने वाले माता–पिता की संपति में पुत्री भी पुत्र की भांति ही हिस्सेदार घोषित की गयी है। यह स्थिति केवल स्वअर्जित संपति के सबंध में ही रही। सन् 2005 से पहले पैतृक संपति में पुत्रियों को अधिकार नहीं था परंतु हिन्दू उतराधिकार संशोधन अधिनियम 2005 के पश्चात् विधि में परिवर्तन किया गया और मिताक्षरा सहदायिकी जो पूर्व में केवल किसी सामान्य पूर्वज के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र को सहदायिकी संपति में जन्म से अधिकार प्रदान करती थी उसे परिवर्तन कर पुत्री, पौत्री व प्रपौत्री को भी पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र की भांति सहदायिकी संपति में अधिकार दिया गया है। इस प्रकार यह संशोधन हिन्दू उतराधिकार अधिनियम के मूलभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन करता है और बड़े सामाजिक परिवर्तन का संकेत है। हिन्दू उतराधिकार अधिनियम 2005 के प्रारम्भ होने के पश्चात मिताश्ररा विधि द्वारा शासित संयुक्त हिन्दू परिवार में संयुक्त परिवार की संपति में किसी सहदायिकी पुत्री 1. उसी प्रकार अपने जन्म से स्वयं के अधिकार से सहदायक होगी जैसे की पुत्र होता है। सहदायिकी संपति में उसे वही अधिकार प्राप्त होगे जेसे कि पुत्र को प्राप्त होते है। 2. सहदायिकी संपति के विषय में पुत्री के दायित्व भी पुत्र के ही समान होंगे। इसके पश्चात संशोधित धारा 6 हिन्दू उतराधिकार अधिनियम यह उल्लेखित करती है कि सहदायिकी संपति का बंटवारा उतरजीवीता के सिद्धान्त पर न किया जाकर वसीयती अथवा र्निवसीयती उतराधिकार के सिद्धान्त के आधार पर किया जायेगा। इस प्रकार अपने पूर्वजों की सहदायिकी संपति में हिस्सा प्राप्त करने वाली पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री ऐसी संपति की वसीयत कर सकेगी और वसीयत किये जाने की स्थिति में यह संपति वसीयत के उपबंधों के अनुसार र्निगमित होगी। वसीयत न किये जाने की स्थिति में र्निवसीयती मृत्यु होने पर हिन्दू उतराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 15 व 16 के नियम लागू होंगे अर्थात् र्निवसीयती मृत्यु होने पर सहदायिकी संपति जो किसी पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री के द्वारा प्राप्त की गयी है ऐसी पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री के पुत्र, पुत्री जिसके अंतर्गत किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री की संताने भी आती है तथा पति को प्रथमतया उतराधिकार में प्राप्त होगी। पुत्र पुत्री अथवा पूर्व मृत पुत्र अथवा पुत्री के संताने व पति के न होने पर ऐसी संपति पति के वारिसों को यदि कोई हो तो उतराधिकार में प्राप्त होगी। तृतीयतः माता–पिता को, चतुर्थ स्थिति में पिता के वारिसों को अंततः माता के वारिसों को ऐसी सहदायिकी संपति उतराधिकार में प्राप्त होगी। इस प्रकार सहदायिकी संपति के उतराधिकार के नियम र्निवसीयती उतराधिकार के नियमों के समान कर दिये गये है और उतरजीविता के सिद्धान्त के आधार पर सहदायिकी संपति का बंटवारा किये जाने के पूर्व में प्रचलित नियम को धारा 6 में हिन्दू उतराधिकार संशोधित अधिनियम 2005 के द्वारा समाप्त कर दिया गया। यह अधिनियम लैंगिक आधार पर संपति में उतराधिकार के नियमों में किये जाने वाले विभेद को समाप्त किये जाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण अधिनियम है। इस अधिनियम ने हिन्दू मिताश्ररा सहदायिकी की प्राचीन अवधारणा को पूर्ण रूप से परिवर्तित कर दिया है। यद्यपि सहदायिकी संपति में पुत्रीयों को इस प्रकार अधिकार दिये जाने पर समाज में वैचारिक मतभेद है। इसकी आलोचना इस आधार पर की जाती है कि हिन्दू समाज में बहन की संतानों के विवाह होने पर भाई के द्वारा मायरा भरने का सामाजिक रिवाज है जिसमें भाई के द्वारा बहन और उसके समस्त परिवार के सबंधियों को जिसमें उसके ससुर के परिवार के समस्त स्त्री–पुरूष आते है जिसमें देवर, जेठ की

संताने देवरानिया, जेठानियॉ सहित स्वयं बहन के परिवार जिसमें बहन बहनोई, भाणजा, भाणजी शामिल होते है को पहरावनी (कपड़े) तथा मायरे में जेवर और नकदी भी बहन की संतानो की शादी पर भाई के द्वारा दी जाती है जिससे भाई पर आर्थिक बोझ पड़ता है। पैतृक संपति में बहन को हिस्सा दिये जाने का प्रभाव भाई–बहन के रिश्तों में तनाव के रूप में देखने को मिल सकता है। जिसका प्रभाव मायरे जैसे सामाजिक रीति रिवाजो को विपरीत रूप से प्रभावित कर सकता है। इसके अतिरिक्त इस संशोधन के आलोचको का यह भी मत है कि माता–पिता की देखरेख की प्राथमिक जिम्मेदारी पुत्र पर डाली गयी है और हिन्दू सामाजिक रीति–रिवाजों के अनुसार पुत्री को उसके ससुराल का सदस्य माना जाता है। कन्यादान के पश्चात हिन्दू समाज में बेटी के घर में पानी पीने अथवा खाना खाने का भी रिवाज नहीं है यदि कोई पिता, माता या कन्या के पीहर पक्ष का कोई सदस्य कन्या के घर में भोजन भी करता है तो भेंट स्वरूप कुछ धनराशि उसे देकर जाता है जिसके पीछे यह मान्यता है कि बेटी के घर का कुछ भी उसके पीहर पक्ष के द्वारा नहीं लिया जाता है और न ही रखा जाता है लेकिन पैतृक संपति में यदि बेटी, पौती और प्रपौत्री हिस्सा प्राप्त करती है तो पीहर पक्ष के सदस्यों से यथास्थिति पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री का संपति सबंधी हित टकराने से हितों में संघर्ष होना स्वाभाविक है और इससे हिन्दू धर्म और समाज के आधारभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन होने के साथ–साथ पारिवारिक और सामाजिक तनाव बढने की पूर्ण संभावना है जो आलोचको के अनुसार समाज हित में नही है। आलोचको का यह भी मत है कि पैतृक संपति में पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री के द्वारा हिस्सा प्राप्त किया जाने के पश्चात ऐसी संपति ऐसी पुत्री, पौत्री अथवा प्रपौत्री की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र, पुत्री और पति अथवा इनके ना होने की स्थिति में पति के वारिसों को प्राप्त होती है जहा तक पुत्री के पुत्र, पुत्री का प्रश्न है वहा तक तो इस विषय को न्यायोचित माना जा सकता है क्योकि दोहिता, दोहिती का निकट सबंध ऐसी पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री के साथ–साथ नाना–नानी और मामा–मामी से भी माना जा सकता है परंतु पुत्र, पुत्री ना होने की स्थिति में ऐसी संपति का उतराधिकार में सहदायिकी संपति प्राप्त करने वाली पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री के पति ओर पति के वारिसों को उतराधिकार के तौर पर प्राप्त होना नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के विरूद्ध है। आलोचको का यह कहना है कि सहदायिकी संपति को प्राप्त करने वाली पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र, पुत्री जिसमें पूर्व मृत पुत्र और पुत्री की संताने भी शामिल मानी जा सकती है के न होने की स्थिति में अपने मातृ पक्ष से प्राप्त की गयी सहदायिकी संपति ऐसी पुत्री, पौत्री और प्रपौत्री के पिता और पिता के वारिसों में जानी चाहिए। इस प्रकार धारा 6 हिन्दू उतराधिकार अधिनियम में किया गया यह संशोधन लैंगिक विभेद को सहदायिकी संपति के उतराधिकार के विषय में समाप्त तो करता है लेकिन सामाजिक तौर पर इसके पक्ष और विपक्ष दोनो में अपने–अपने तर्क रखे जा सकते है।

सूचना शक्ति के एक स्त्रोत के रूप में

ज्ञान शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। विधि ने इसे स्वीकार किया है और शासन में पारदर्शिता लाने के लिए व सरकारी विभागों को जनता के प्रति उतरदायी बनाने के दृष्टिकोण से सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 अस्तित्व में आया है जिससे प्रशासन जनता के प्रति अधिक उतरदायी बन पाया है। सूचना के अधिकार को एक महत्वपूर्ण विधिक अधिकार माना गया है। सूचना के अधिकार के अंतर्गत आवेदन किये जाने पर सामान्यतया 30 दिन की अवधि में सबंधित विभाग को सूचना उपलब्ध करानी होती है जब तक कि ऐसी सूचना किसी अन्य व्यक्ति के एकांतता के अधिकार का हनन न करती हो तथा दूसरे देशो के साथ अंतराष्ट्रीय सबंध राष्ट्र की एकता व अखंडता के लिये घातक ना हो ऐसी सूचना सूचना के अधिकार के अंतर्गत सबंधित विभागों को उपलब्ध करानी होती है। इसके लिए निर्धारित समयावधि में सूचना उपलब्ध ना कराने पर प्रथम व द्वितीय अपील के प्रावधान भी अधिनियम में रखे गये है। यदि सूचना किसी अन्य विभाग से सबंधित है तो सूचना के आवेदन को सबंधित विभाग में स्थानातंरित करने का उतरदायित्व भी उस लोक

सूचना अधिकारी पर डाला गया है जिससे कि सूचना के अधिकार के अंतर्गत सूचना के लिए आवेदन किया गया है। इससे भारत में शासन में लोकतांत्रिक भावनाए, जनसाहभागिता तथा पारदर्शिता में वृद्धि हुयी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा सूचना के अधिकार को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 में मूल अधिकार का स्थान दिया गया है।

प्राथमिक शिक्षा एक मूल अधिकार

शिक्षा को सामाजिक उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा मोहनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य ए आई आर 1992 के निर्देशक वाद में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि शिक्षा का अधिकार व्यक्ति का मूलभूत अधिकार है जिसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। 86 वां संविधान संशोधन सन 2002 के माध्यम से भारतीय संविधान में संशोधन कर 6 से 14 वर्ष की आयु के बालको के लिए प्राथमिक शिक्षा को मूलभूत अधिकार घोषित किया गया है। संसद ने इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये शिक्षा का अधिकार अधिनियम सन् 2009 अधिनिर्मित किया गया है जिसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा को निशुल्क व अनिवार्य घोषित किया गया है व सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े हुये वर्गो के लोगों को निजी शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण प्रदान किया गया है। जिससे भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुरूप सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिली है। सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ वर्ग शिक्षा के माध्यम से समाज की मुख्यधारा से जुड़ने में समर्थ हो पाया है।

निशुल्क विधिक सहायता मूल अधिकार

निशुल्क विधिक सहायता का अधिकार भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मूल अधिकार घोषित किया गया है। इस भावना को ध्यान में रखते हुये भारतीय संसद के द्वारा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 अधिनिर्मित किया गया है जिसके अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य स्तर पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण व जिला स्तर पर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण की स्थापन्ना की गयी है। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति, राज्य में उच्च न्यायालय स्तर पर उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति तथा ताल्लुका स्तर पर ताल्लुका विधिक सेवा समिति का गठन किये जाने के प्रावधान इस अधिनियम में किये गये है जिसके अनुसार उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति, उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति तथा ताल्लुका विधिक सेवा समिति का गठन नियमानुसार किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 ए में प्रतिपादित इस नीति निर्देशक तत्व को जिसमें यह कहा गया है राज्य यह ध्यान रखेगा कि कोई भी व्यक्ति अपनी आर्थिक अक्षमता के कारण न्याय से वंचित नहीं रहेगा और आर्थिक संसाधन नहीं होने के कारण न्यायिक प्रकिया का संरक्षण प्राप्त करने से कोई व्यक्ति वंचित ना रहे इसलिए ऐसे व्यक्ति के अधिकारो का संरक्षण करने का उतरदायित्व हमारे संविधान ने राज्य को दिया है। संविधान के इसी भावना को क्रियान्वित करते हुये भारतीय संसद के द्वारा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम को पारित किया गया है जिसके अनुसार महिलाएं एवं बच्चे, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्य, औद्योगिक श्रमिक, बड़ी प्राकृतिक आपदाए बाढ, सूखा, भूकम्प के शिकार व्यक्ति, औद्योगिक आपदाओ के शिकार व्यक्ति, हिरासत में रखे गये लोग, विकलांग व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय पचास हजार रूपये से अधिक नहीं हो तथा बेगार और अवैध मानव व्यापार के शिकार लोग इस अधिनियम के विधिक प्रावधानों के अनुसार निशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने के हकदार घोषित किये गये है। राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण ने कानूनी सहायता स्कीम के अंतर्गत ऐसे विचाराधीन कैदियों को विधिक सहायत देना शुरू किया है जो संसाधनों के अभाव में अपना बचाव नहीं कर सकते है और अपना पक्ष रखने के लिए वकील नहीं रख सकते है। अब हर

मजिस्ट्रेट तथा न्यायाधीश की अदालत में ऐसे व्यक्तियों की कानूनी सहायता के लिए वकील लगाये गये है जो पुलिस द्वारा न्यायालय के समक्ष ऐसे व्यक्तियों को प्रस्तुत किये जाने की दिनांक से ही विचाराधीन कैदियों का बचाव करते है जो स्वयं अपने लिए अधिवक्ता नियुक्त करने में असमर्थ है। इसी प्रकार विधिक सेवा प्राधिकरण के द्वारा विधिक साक्षरता स्कीम भी चलायी गयी है जिसके द्वारा विधिक जागृति के लिए ऐसे क्षेत्रों में विधिक साक्षरता शिविर लगाये जाते है जहा विधिक शिक्षा और जागरूकता का अभाव हो। जिससे कि जनसामान्य को सरल भाषा में उनके विधिक अधिकारों के प्रति जागरूक करने में पर्याप्त सहायता मिलती हो। विधिक सेवा प्राधिकरण के द्वारा संचालित इन योजनाओं के अतिरिक्त राज्य सरकार ने राजस्थान राज्य पीड़ित प्रतिकर योजना भी संचालित कर रखी है जिसमें बालात्कार के पीड़ितों, यौन शोषण के शिकार बालकों तथा ऐसे अपराध पीड़ितो को जहा अपराध करने वाले व्यक्ति का पता नही चल सका हो आर्थिक प्रतिकर दिये जाने के प्रावधान भी किये गये है। यह प्रतिकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर, अनुसंधान का नतीजा न्यायालय में पेश किये जाने पर तथा अंतिम निर्णय होने पर प्रत्येक स्तर पर नियमानुसार तय किये गये है इससे पीड़ित व्यक्ति को सामाजिक पुर्नवास में मदद मिलती है। यह भी विधि के द्वारा समाज में लाया गया एक बड़ा परिवर्तन है जो राज्य के लोककल्याणकारी स्वरूप को स्पष्ट करता है।

कामकाजी महिलाओं को यौन शोषण से सुरक्षा विषयक उपबंध तथा महिलाओं के प्रति यौन अपराधों से सबंधित विधि तथा सबूत का भार के विषय में महिलाओं से सबंधित अपराध जैसे दहेज मृत्यु, आत्महत्या का दुष्प्रेरण तथा बालात्कार जैसे अपराधों में साक्ष्य विधि के सामान्य सिद्धान्तों से विचलन

समाज में बड़ी संख्या में महिलाएँ भी रोजगार के लिये विभिन्न सरकारी व निजी क्षेत्रों में कार्य करती है। कार्यरत स्थानों पर महिलाओं का यौन शोषण ना हो इसके विषय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के अपने निर्णय में महिलाओं के यौन शोषण को रोकने के लिए दिशा निर्देश जारी किये थे तथा प्रत्येक कार्य स्थान पर ऐसे विषयों पर विचार करने के लिए कमेटी बनाये जाने का प्रावधान किया है जिसके अनुसार प्रत्येक कार्यस्थान पर ऐसी कमेटी नियमानुसार बनायी गयी है जो कार्यरत महिलाओं के कार्यस्थान पर सम्मानजनक जीवन के विषय में उठाया गया सम्मानजनक कदम है। दिल्ली में हुये निर्भया केस के पश्चात महिलाओं के प्रति यौन शोषण को ओर ज्यादा गंभीरता से लिया गया है तथा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 354 में संशोधन कर उसे ओर अधिक व्यापक स्वरूप प्रदान किया गया है। अब महिलाओं के प्रति अशलील यौन प्रस्ताव रखना, अश्लील इसारे करना, अश्लील चित्र दिखाना, महिलाओं का पीछा करना, महिलाओं की गोपनियता भंग करने के आशय से उनके चित्र लेना, महिलाओं की प्राईवेट गतिविधि में हस्तक्षेप करना इत्यादि भी अपराध की श्रेणी में रखे गये है तथा धारा 354 में दाण्डिक प्रावधान को अधिक कठोर किया गया है। पूर्व में धारा 354 भारतीय दण्ड संहिता का अपराध जमानतीय अपराध था लेकिन इसे अजमानतीय अपराध बनाया गया है तथा कारावास की अवधि भी दो वर्ष से बढाकर पाच वर्ष कर दी गयी है जो महिलाओं के प्रति बढ़ते हुये अपराध के प्रति समाज की गंभीरता को दिखाती है। पूर्व में धारा 376 में बालात्कार के अपराध के लिये पुरूष के लिंग प्रवेशन को अनिवार्य माना गया था लेकिन निर्भया के केस के पश्चात पुरूष के शरीर का कोई भी अंग या वस्तु महिला की यौनि, गुदा द्वार में प्रविष्ट करना भी बलात्कार की परिभाषा में रखा गया है। बलात्कार के दाण्डिक प्रावधान को कठोर किया गया है। यह सभी विधिक प्रावधान इस बात को दर्शाते है कि समाज अपनी सामाजिक बुराईयों के प्रति गंभीर है और महिला सुरक्षा एक महत्वपूर्ण सामाजिक विषय है जिसको समाज और विधिक जगत के द्वारा गंभीरता से लिया गया है। दाण्डिक विधि में यह सिद्धान्त है कि अपराधी के प्रति उसके निर्दोष होने की अवधारणा की जाती है और अभियुक्त को संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन पर होता है लेकिन समय के साथ–साथ सबूत के भार के इस सिद्धान्त

में परिवर्तन किया गया है जिसे उपधारणाओं की विधि के नाम से जाना जाता है। बलात्कार के किसी मामले में यदि बलात्कार की पीड़ित स्त्री न्यायालय के समक्ष यह साक्ष्य देती है कि उसकी सहमति के बिना उसके प्रति बलात्कार का आपराधिक कृत्य किया गया है को धारा 114 क भारतीय साक्ष्य अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि ऐसी परिस्थति में न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि पीड़ित स्त्री की सहमति के बिना उसके साथ बालात्कार का कृत्य किया गया है यदि अभियुक्त पक्ष पीड़ित स्त्री की सहमति का बचाव लेता है तो ऐसे तथ्य को साबित करने का भार प्रतिरक्षा पक्ष पर होगा इस प्रकार सबूत के भार के विषय में साक्ष्य के मूलभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन किया गया है यही स्थिति दहेज, मृत्यु के अपराध के विषय में और विवाहित स्त्री को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित करने से सबंधित विधि के सबंध में है। इस विषय में विवाहित स्त्री को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित करने के मामले में यदि यह दर्शित किया जाता है कि विवाह के सात वर्ष के भीतर विवाहित स्त्री के द्वारा आत्महत्या की गयी है और विवाहित स्त्री के पति और उसके नातेदारो का आचरण विवाहित स्त्री के प्रति क्रूरता का रहा है तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि पति और पति के नातेदारों के द्वारा ऐसी विवाहित स्त्री को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित किया गया है। इस विषय में प्रावधान धारा 113 ए भारतीय साक्ष्य अधिनियम में किये गये है। दहेज मृत्यु कारित करने के विषय में विधि के यह उपबंध है कि यदि किसी स्त्री की मृत्यु विवाह के सात वर्ष के भीतर दाह के कारण अर्थात् जलाये जाने के कारण अथवा शारिरीक क्षति के कारण होती है अथवा समान्य परिस्थतियों से अन्यथा मृत्यु कारित होती है जिससे विवाहित स्त्री की मृत्यु के कारण के विषय में युक्तियुक्त व्यक्ति के मन में संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक है और परिस्थतियॉ यह दर्शित करती है कि विवाहित स्त्री की मृत्यु के कुछ पूर्व विवाहित स्त्री के पति और नातेदारों द्वारा ऐसी विवाहित स्त्री को दहेज के विषय में प्रताड़ित किया गया था और विवाहित स्त्री के प्रति दहेज के विषय में क्रूरता की गयी थी को न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे पति और नातेदारों द्वारा विवाहित स्त्री की दहेज मृत्यु कारित की गयी है। इन तथ्यों को ना साबित करने का भार प्रतिरक्षा पक्ष पर अर्थात प्रकरण के अभियुक्त पर होगा। इस विषय में प्रावधान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी में किये गये है इस प्रकार सबूत का भार के विषय में परंपरागत सिद्धान्तों में समय के साथ–साथ सामाजिक परिस्थतियों में आये परिवर्तन के अनुरूप विधिक उपबंधों में भी परिवर्तन किया गया है।

किशोर न्याय अधिनियम व बाल कल्याण समिति

बाल अपराधियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण सामान्य अपराधियों की तुलना में नरम है। समाज यह मानता है कि बालक मन कोमल होता है उसको सुधार की गुन्जाईश होती है। यदि बालक को उचित वातावरण उपलब्ध कराया जाये व अवसर प्रदान किये जाये तो बालक आपराधिक गतिविधियों से विमुख होकर अपने व्यक्तिगत विकास के साथ–साथ समाज के लिए एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में उपयोगी हो सकता है इसलिए बालकों के प्रति विशेष दृष्टिकोण रखते हुये विधि से संघर्षरत बालक के विषय में किशोर न्याय अधिनियम 2015 पारित किया गया है जिसमें बालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से विचार करते हुये सामान्य न्यायालय के स्थान पर ऐसे बालकों का विचारण किशोर न्याय अधिनियम के द्वारा किया जाता है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य विधि से संघर्षरत बालकों में सुधार लाकर उन्हें जिम्मेदार नागरिक के रूप में समाज में प्रतिस्थापित करना है। इसी प्रकार ऐसे बालक जिनकी पारिवारिक रूप से उपेक्षा की गयी हो, जिनके पास अपने जीवनयापन के साधन नही है, जो सरंक्षणहीन है ऐसे बालकों के कल्याण के लिए प्रत्येक जिला स्तर पर बाल कल्याण समिति का गठन किया गया है। यह समाज का बालकों के प्रति कल्याणकारी दृष्टिकोण ही है जिसे विधिक रूप से विधि के द्वारा मान्यता दी गयी है। यह समाज में होने वाले परिवर्तन का संकेत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- हिन्दू विधि – डॉ पारस दीवान, इलाहबाद लॉ एजेन्सी
- हिन्दू लॉ – मुल्ला, Lexsis Nexis
- मुस्लिम विधि – डा अकील अहमद, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी
- भारत का संविधान एक परिचय – डा. डी.डी बसु, Lexsis Nexis
- भारतीय दण्ड संहिता – त्रिदिवेश भट्टाचार्य, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी
- दण्ड प्रकिया संहिता – रतनलाल तथा धीरजलाल, Lexsis Nexis
- भारतीय साक्ष्य विधि – रतनलाल तथा धीरजलाल, Lexsis Nexis
- भारतीय साक्ष्य विधि – डा अवतार सिंह, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी
- किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण अधिनियम 2015) – राजेन्द्र बाफना, बाफना पब्लिशिंग हाउस

❖◆❖